आखर हिंदी पत्रिका ; e-ISSN-2583-0597 खंड 5/अंक 2/जून 2025
Received: 15/05/2025; Accepted: 24/06/2025; Published: 28/06/2025

स्कंदगुप्त: राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का संवाहक

डॉ. गीता कुमारी
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
सत्येन्द्र नारायण सिन्हा महाविद्यालय, टिकारी
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
E-mail: geetakumari.idcs10@gmail.com

डॉ. गीता कुमारी, स्कंदगुप्त: राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का संवाहक, आखर हिंदी पत्रिका, **खंड 5/अंक 2/जून 2025**,(132-137) https://doi.org/10.5281/zenodo.15776914

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

सारांश:

जयशंकर प्रसाद 'स्कंदगुप्त' नाटक में इतिहास का सर्जनात्मक प्रयोग करते हुए नवीन राजनीतिक-सांस्कृतिक मानस तैयार करने का प्रयास करते हैं। उन्होंने ऐतिहासिकता का आश्रय लेकर अपनी युगीन समस्याओं का समाधान निकालने की पुरजोर कोशिश की है। साथ ही इतिहास से संस्कृति का समन्वय भी किया है। उन्होंने इतिहास का सम्पूर्ण स्वरूप अपनाते हुए यह बताया है कि ऐतिहासिक उत्थान के साथ-साथ संस्कृति का भी उत्थान होता है और ऐतिहासिक ह्रास के काल में संस्कृति का भी अद्यः पतन होता है। इतिहास राजनीति और संस्कृति के सह-संबंध के कारण जीवन के प्रति उनका वस्तुवादी दृष्टिकोण नाटकों में अधिक मुखर हुआ है। अतः यह अकारण नहीं है कि प्रसाद के नाटकों के नायक या मुख्य पात्र राजनीतिक-सामाजिक समस्याओं से जूझते दिखाई पड़ते हैं।

शब्द-कुंजी:

ऐतिहासिक, स्कंदगुप्त, औपनिवेशिक, उत्थान, राष्ट्रीयता, प्रपंचबुद्धि आदि।

प्रस्तावना:

प्रसादकालीन भारत में औपनिवेशिक संस्कृति राष्ट्रीय चिंतन धारा में प्रवेश कर गई थी। प्रसाद जी लोगों की इस मनोवृर्त्ति से परिचित थे। तभी तो उन्होंने भारत के प्राचीन आधार को समझते हुए भी पात्रों का चरित्रांकन राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप किया है। प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीयता की दृष्टि से चरित्र दो तरह के हैं- एक वे जो देश, समाज, संस्कृति की रक्षा और संवर्धन के लिए अपना सर्वस्व होम कर देते हैं। दूसरे वे जो अपने स्वार्थ के लिए देश और जाति को दाँव पर चढ़ा देते हैं। स्कंदगुप्त नाटक में स्कंदगुप्त, देवसेना, पर्णदत्त, चक्रपालित आदि देश की रक्षा के लिए अपना उत्सर्ग देने वाले चरित्र हैं जबकि अनन्तदेवी, भटार्क, प्रपंचबुद्धि, पुरगुप्त स्वार्थी, षड्यंत्रकारी और सत्तासेवी चरित्र है।

प्रसाद के नाटक अतीत के आईने में अपने समय को प्रतिबिम्बित करने के लिए लिखे गए। स्कंदगुप्त में वर्णित शौर्य, प्रेम, आत्मबलिदान, राष्ट्रीयता और एकता जैसे उदात्त आदर्शों के पीछे युगीन स्वतंत्रता आंदोलन की चेतना अंतर्निहित है। "प्रसाद ने जिस रूप में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना को अपने नाटकों में प्रस्तुत किया है वह केवल समसामयिक नहीं है उनके समय के पहले की भी है और उनके समय के बाद की भी।[1] स्कंद का राष्ट्रीय छायावादी व्यक्तित्व बन्धुवर्मा का अद्वितीय त्याग जयमाला की यह प्रेरक अनुभूति कि 'युद्ध क्या गान नहीं है?' और मातृगुप्त का गौरव गान ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जिनके पीछे छायावादी युग की राष्ट्रीय-चेतना ध्वनित हुई है। इतिहास से अपने युगबोध को जोड़ने का ही परिणाम है कि स्कंदगुप्त में छायावादी वैयक्तिक चेतना तथा तत्कालिक राष्ट्रीय-चेतना के स्वर एक साथ सुनाई पड़े। जयमाला स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत युवाओं को प्रेरणा देते हुए कहता है," ..... स्त्रियों की, ब्राह्मणों की, पीड़ितों और अनाथों की रक्षा में प्राण-विसर्जन करना क्षत्रिय का धर्म है। एक प्रलय की ज्वाला अपनी तलवार से फैला दो। भैरव के शृंगीनाद के समान प्रबल हुंकार से शत्रु-हृदय कँपा दो। वीर! बढ़ो, गिरो तो मध्याह्न के भीषण सूर्य के समान-आगे, पीछे सर्वत्र आलोक और उज्ज्वलता रहे।"[2] इससे राजनीतिक समन्वित जड़ ऐतिहासिक तथ्यों में प्राणमय काव्य-संवेदना स्पंदित हुई। प्रसाद जी ने वाह्य जीवन की घटनाओं को आंतरिक उथल-पुथल के साथ ऐसे जोड़ा कि राष्ट्रीय चरित्र और अंतर्द्वन्द्व का निर्माण स्वतः होता चला गया।

प्रसाद का प्रत्येक नाटक राष्ट्रवाद, सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याओं, स्वाधीनता के किसी-न-किसी महत्वपूर्ण पक्ष को लेकर चलता है। आध्यात्मिक रूझानों के कारण प्रसाद जी आधुनिक युग की समस्याओं से पलायन नहीं करते बल्कि उनसे टकराते हैं, लोहा लेते हैं। "राष्ट्रीय भाव बोध की अभिव्यक्ति प्रसाद के नाट्य-विधान का मूलाधार कहा जा सकता है। इतिहास के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को उद्दीप्त करने का सजग प्रयास करके अधिकतर नाटकों में द्रष्टव्य हैं।"[3] स्कंदगुप्त नाटक में भी स्वाधीनता और राष्ट्रवाद का भाव प्रमुख रूप से उभरता है। प्रसाद जी राष्ट्रवाद की प्रतिष्ठा के लिए उन परिस्थितियों और प्रवृत्तियों की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं जिनसे राष्ट्रवाद को सीधा खतरा होता है। देश में एक ओर शकों और हूणों का आक्रमण हो रहा था और दूसरी

ओर गृह कलह, धर्म संघों का पारस्परिक टकराव तथा राजाओं का विलास जारी था। बंधुवर्मा कहता है, "आर्यावर्त पर विपत्ति की प्रलय-मेघमाला घिर रही है। आर्य साम्राज्य के अन्तर्विरोध और दुर्बलता को आक्रमणकारी भलीभाँति जान गये हैं।"[4] कोई भी आक्रांता सबसे पहले विजीत किये जाने वाले देश के चरित्र का अध्ययन करता है तत्पश्चात् आक्रमण करता है, इलाके जीतता है, वहाँ की जनता पर भाँति-भाँति के अत्याचार करता है। वह अत्याचार के क्रम में नीति-दुर्नीति में फर्क नहीं करता। शक और हूण भारतीय भू-भाग को जीतकर आर्य कन्याओं का अपहरण करते हैं, गर्म लोहे से उन्हें दागते हैं तथा पुरुषों पर कोड़े बरसाते हैं। मातृगुप्त विदेशी आक्रमणकारियों के अत्याचार के संबंध में कहता है, "विदेशी आक्रमणकारी अपनी धाक जमाने के लिए भाँति-भाँति के अत्याचार करके आतंक फैला रहे हैं। चारों ओर विप्लव का साम्राज्य है। निरीह भारतीयों की घोर दुर्दशा है।"[5]

सत्ता की दायित्वहीनता और विलासिता से पराधीनता के खतरे पैदा होते हैं। गुप्तकाल में साम्राज्य की सीमाएँ विस्तृत हो गयी थी। उसी अनुपात में राजा का दायित्व भी बड़ा था। लेकिन राजा अपने कर्त्तव्य से बेखबर था। वह सत्ता को गले पड़ी वस्तु समझता था। देश की रक्षा के लिए सोचने की बजाय कुसुमपुर (पटना) में आपानकों (शराबियों) का समारोह आयोजित करने में मग्न था। राजधानी विलासिता का केन्द्र बन गया था। सैनिक तक विलास में डूब गये थे। राष्ट्रीय मान-सम्मान का बोध ही जैसे खत्म हो गया था। साम्राज्यवादी संस्कृति के सामने गुलाम जनता को अपनी संस्कृति हेय लगनेे लगी थी। एक सैनिक कहता है, "यवनों से उधार ली हुई सभ्यता नाम की विलासिता के पीछे आर्यजाति उसी तरह पड़ी है जैसे कुलवधू को छोड़कर कोई नागरिक वेश्या के चरणों में। देश पर बर्बर हूणों की चढ़ाई और तिस पर भी यह निर्लज्ज आमोद।"[6] प्रसाद ने यहाँ प्राचीन इतिहास का आधार लेकर अपने समय की जनता की मानसिक दासता को निशाना बनाया और औपनिवेशिक संस्कृति के मोहजाल को काटने की कोशिश की है। साथ ही प्रसाद जी ने राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण में मानवीय मूल्यों के साथ-साथ स्वतंत्रता की चाह को भी महत्व दिया है। स्कंदगुप्त में पर्णदत्त समस्त शोषित-वंचितों के प्रति सिर्फ सहानुभूति नहीं दिखाता अपने इस कथन से अधिकार भाव भी जगाता है, "अन्न पर स्वत्व है भूखों का और धन पर स्वत्व है देशवासियों का। ..... वह थाती है, उसे लौटाने में इतनी कुटिलता। विलास के लिए उनके पास पुष्कल धन है और दरिद्रों के लिए नहीं।"[7]

प्रसाद ने स्कंदगुप्त नाटक में स्कंदगुप्त को उत्तराधिकार के प्रति उदासीन दिखाया है। सत्ता संघर्ष में स्कंदगुप्त को यदि उतरना पड़ा तो गुप्तवंश के उत्तराधिकार के अव्यवस्थित नियम के कारण ही। प्रसाद जी ने कुमारगुप्त की हत्या और देवकी की हत्या के षड्यंत्र के माध्यम से स्कंदगुप्त के सत्ता संघर्ष को निरुपित किया है। इससे उत्तराधिकार के लिए स्कंदगुप्त की सत्ता संघर्ष के लिए ऐतिहासिक संभाव्यता बनती है। देवकी की हत्या के षड्यंत्र का मामला इस सत्ता संघर्ष में कोई अहम् भूमिका प्रत्यक्षतः नहीं निभाता। लेकिन माँ की यातना पुत्र स्कंदगुप्त में नवीन शक्ति का संचार अवश्य करती है। प्रसाद दिखाते हैं कि विलासिता के कारण ही कुमारगुप्त अपने राष्ट्रीय जिम्मेदारियों से बेखबर था। उसकी कमजोरियों का लाभ उठाकर ही शक और हूण देश की सीमा

के भीतर घुस आये। प्रसाद जी सत्ता संघर्ष में स्कंदगुप्त के प्रवेश को राष्ट्र हित में दिखाने के लिए भी कुमारगुप्त को विलासी चित्रित करते हैं। सवाल है यदि कुमारगुप्त विलासी था तो अपने पूर्वजों से विरासत में पाये गये विशाल साम्राज्य को उसने जीवन भर अक्षुण्ण कैसे रखा? उसके जीवन की दो महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं- अश्वमेघ यज्ञ और पुष्यमित्रों से युद्ध। अश्वमेघ यज्ञ की बात स्वर्ण मुद्राओं से प्रमाणित होती है और पुष्यमित्रों से युद्ध की बात भितरी के स्तंभलेख से स्पष्ट होती है। उसकी वीरता एवं पराक्रम इन दोनों बातों से सिद्ध होते हैं। मुद्राओं पर कुमारगुप्त के नग्न मांसल शरीर का जो चित्र अंकित है उसे देखते हुए यह नहीं माना जा सकता कि वह विलासी, दुर्बल तथा रुग्न था। कुमारगुप्त से गोविन्दगुप्त का रूठना कुमारगुप्त की विलासिता को प्रमाणित करने के लिए दिखाया गया ताकि स्कंदगुप्त के राजनीतिक प्रवेश को राष्ट्र हित में न्यायोचित ठहराया जा सके।

प्रसाद जी राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम की प्रकृति और उसमें पनप रही विघटनकारी शक्तियों को पहचान रहे थे। नवजागरण के साथ पुनर्रुत्थानवादी एवं साम्प्रदायिक शक्तियाँ सिर उठा रही थी। यदि प्रसाद जी के काल में हिन्दू-मुस्लिम टकराव था तो इसे ध्वनित करने के लिए उन्होंने अतीत में बौद्ध-ब्राह्मण संघर्ष की पृष्ठभूमि चुनी। प्रपंचबुद्धि धर्म की आड़ में ही तरह-तरह के कुचक्र रचता है। धर्म के मानवीय सरोकार से किसी का मतलब नहीं था। मतलब था तो सिर्फ कर्मकांड से। ये कर्मकांडी, धर्मावलंबी, निपराधों की जान लेने में भी हिचकते नहीं थे। देशद्रोह से भी इन्हें परहेज नहीं था। भटार्क, अनन्तदेवी, प्रपंचबुद्धि गुप्त रूप से हूण सेनापति से समझौता कर लेते हैं। अपने ही देश की स्वतंत्रता के खिलाफ इनके षड्यंत्र की ओर इशारा करता हुआ हूण सेनापति कहता है, "समस्त सद्धर्म्म (बौद्धधर्म) के अनुयायी और संघ स्कंदगुप्त के विरूद्ध है। याज्ञिक क्रियाओं की प्रचुरता से उनका हृदय धर्मनाश के भय से घबरा उठा है। सब विद्रोह करने को उत्सुक हैं।"[8] धातुसेन सिंहल का राजकुमार है। वह मगध साम्राज्य का उत्थान देखना चाहता है। लेकिन उसे देखने को मिलता है राज परिवार का कलह, धर्म संघों की पारस्परिक लड़ाई। ये धर्म संघ एक-दूसरे को नीचा दिखाने के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार थे। कर्मकांडी ब्राह्मणों के लोभ की भी धातुसेन निन्दा करता है। वह ब्राह्मणों से कहता है, "लोभ ने तुम्हारे धर्म का व्यवसाय चला दिया। दक्षिणाओं की योग्यता से स्वर्ग, पुत्र, धन, यश, विजय और मोक्ष तुम बेचने लगे।"[9] धर्म विलास का आवरण बन गया था। लोग धार्मिक रूढ़ियों को ही धर्म समझने लगे थे। अपनी धार्मिक रूढ़ियों की रक्षा के लिए ये दूसरे धर्मावलंबी की नरबलि देना पराक्रम का कार्य समझते थे। प्रसाद जी ने धातुसेन और प्रख्यातकीर्ति के द्वारा धार्मिक कठमुल्लेपन पर जबरदस्त प्रहार किया। वे साम्प्रदायिक द्वेष को मिटाकर साम्प्रदायिक सौहार्द्र लाना चाहते थे। उनका यही आशय प्रख्यातकीर्ति के इस संवाद में प्रतिबिम्बित हुआ है, "धर्म के अंधभक्तों ! सभी धर्म, समय और देश की स्थिति के अनुसार विवृत हो रहे हैं और होंगे। ... . हम लोग एक ही मूल धर्म की दो शाखाएँ हैं। आओ, हम दोनों अपने उदार विचार के फूलों से दुःख-दग्ध मानवों का कठोर पथ कोमल करें।"[10] प्रसाद ने रूढ़िवाद, सम्प्रदायवाद को राष्ट्रवाद के विकास में बाधक समझा और इसके विरोध की चेतना जगाने की कोशिश करते हैं। इस संदर्भ में विद्या खंडेलवाल कहती हैं, " प्रसाद ने विश्व मानवता के जिन आदर्शों को वाणी तथा प्रसार सौंपने का प्रयास किया है उसकी रेखाएँ राष्ट्र की भौगोलिक-

राजनीतिक आयामों का स्पर्श करती हुई अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यक्ति की उच्चता और सामाजिक आदर्शों के भव्य स्वर्ग का भी स्पर्श करती है।"[11]

प्रसाद जी पारिवारिक कलह, विदेशी आक्रमण, बौद्ध-ब्राह्मण संघर्ष की भयंकर परिस्थितियों के बीच स्कंदगुप्त के चरित्र को खड़ा करते हैं। स्कंदगुप्त प्रारंभ में अवसाद ग्रस्त है। पर्णदर्त्त कहता है युवराज अपने अधिकारों के प्रति उदासीन हैं। स्कंद पूछता है अधिकार किस लिए? लेकिन जैसे ही अवसाद ग्रस्त स्कंदगुप्त को देश पर मँडराता हुआ खतरा अनुभूत होता है तो वह उदासीनता को त्याग राष्ट्रीय स्वतंत्रता की रक्षा के यज्ञ में कूद पड़ता है। स्कंदगुप्त में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों का रंग बहुत गहरा है। यह रंग उसके अतिन्द्रिय प्रेम में नहीं दिखाई पड़ता, बल्कि उसकी राष्ट्रीय मुक्ति धारणा में यह दिखाई पड़ता है। वह भटार्क से कहता है, "भटार्क ! यदि कोई साथी न मिला तो साम्राज्य के लिए नहीं जन्मभूमि के उद्धार के लिए मैं अकेला युद्ध करूँगा।"[12] स्कंदगुप्त महान राष्ट्रभक्त है। देश की छोटी-से-छोटी चीज से भी वह गहरा स्नेह रखता है। मानव की रक्षा के लिए चिंतित लोगों को वह स्वयं अपने बलबूते पर जाकर गहरी नींद में सोने की सलाह देता है। दरअसल प्रसाद जी स्कंद के माध्यम से अधिकार के प्रति अनासक्ति और कर्म के प्रति जागरूकता का सामंजस्य करने पर बल देते हैं। इस संदर्भ में रमेश गौतम कहते हैं, "स्कंद की यह उदासीनता युग सत्य है जिसके माध्यम से प्रसाद यह पाठ पढ़ाना चाहते हैं कि स्वतंत्रता और स्वत्व की रक्षा कैसे की जाय और किसलिए की जाय। अधिकार के प्रति अनासक्ति और कर्म के प्रति जागरूकता का सामंजस्य करना प्रसाद जी भूले नहीं हैं।"[13] स्कंदगुप्त की संघर्ष क्षमता का तब पता चलता है जब वह कुभा का बाँध टूटने पर वह सैनिकों के साथ बह जाता है। लेकिन हिम्मत नहीं हारता। फिर भी सैन्य संगठन खड़ा कर अंततः हूणों को पराजित कर वह भारतीय युवाओं में उत्साह भरने के लिए कहता है, "सिंहों की बिहार स्थली में शृंगाल-वृन्द सड़ी लोथ' नोच रहे हैं।"[14]

देश के भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए आवश्यक है कि वर्तमान के लिए क्षोभ उत्पन्न किया जाय। ताकि राष्ट्रीय परिवर्तन की परिस्थितियाँ तैयार हों। देश में पनप चुके रूढ़िवाद, संकीर्णता एवं साम्प्रदायवाद से प्रसाद गहरे आहत थे। वे चाहते थे इन संकीर्णताओं के खिलाफ क्षोभ पैदा करना। उनका विश्वास था कि क्षोभ जितना तीव्र होगा उतनी प्रबल राष्ट्रवादी चेतना पैदा होगी। उन्होंने शर्वनाग के द्वारा संकीर्णताओं के विरुद्ध घृणा पैदा कर राष्ट्रीयता का भाव भरना चाहा। "देश के हरे कानन (जंगल) चिता बन रहे हैं। धधकती हुई नाश की प्रचंड ज्वाला दिग्दाह कर रही है। अपने ज्वालामुखियों को बर्फ की मोटी चादर से छिपाये हिमालय मौन है। पिघल कर क्यों नहीं समुद्र से जा मिलता?"[15] अतः प्रसाद जी स्कंदगुप्त नाटक में परतंत्र देश को निर्भीकता पूर्वक मुक्ति पथ पर बढ़ने की सलाह दे रहे थे ताकि एक दिन हमारा देश स्वतंत्रता का आलिंगन कर सके।

उपसंहार:- प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में 'स्कंदगुप्त' का महत्वपूर्ण स्थान है। इतिहास अतीत का आईना है। वे इससे ऐतिहासिक चेतना और कल्पनाशील चेतना का खूबसूरत मेल उपस्थित करते हैं। साथ ही प्रसाद जी चाहते थे कि देश में स्कंदगुप्त, पर्णदत्त, चक्रपालित, देवसेना जैसे चरित्र पैदा हों और वे अपने उत्सर्ग के जरिए स्वतंत्रता के स्वप्न को मूर्त्तिमान करें। प्रसाद के दो उद्देश्य थे- स्वतंत्रता की प्राप्ति और भारतीय सांस्कृतिक श्रेष्ठता

की पुनर्स्वीकृति। प्रसाद अपने इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपने नाटकों का उपयोग देशवासियों में उत्सर्ग भाव जगाने के लिए करते हैं-

"जियें तो सदा उसी के लिये यही अभिमान रहे यह हर्ष।

निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारत वर्ष।"[16]

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. सिद्धनाथ कुमार: प्रसाद के नाटकों का पुनर्मूल्यांकन, मैकमिलन इंडिया प्रेस, मद्रास, 1973, पृ॰ 81
2. जयशंकर प्रसाद: स्कंदगुप्त, अनुपम प्रकाशन, पटना, 2002, पृ॰ 42
3. रामस्वरूप चतुर्वेदी: हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ॰ 153
4. जयशंकर प्रसाद: स्कंदगुप्त, अनुपम प्रकाशन, पटना, 2002, पृ॰ 61
5. वही, पृ॰ 35
6. वही, पृ॰ 83
7. वही, पृ॰ 118
8. वही, पृ॰ 81
9. वही, पृ॰ 106
10. वही, पृ॰ 107
11. श्रीमती विद्या खंडेलवाल: प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय भावना, भारत बुक डिपो, भागलपुर, पृ॰ 58
12. जयशंकर प्रसाद: स्कंदगुप्त, अनुपम प्रकाशन, पटना, 2002, वही, पृ॰124
13. रमेश गौतम: प्रसाद के नाटक-देश और काल की बहुआयामिता, ईशा ज्ञानदीप, 2001, वही, पृ॰ 108
14. जयशंकर प्रसाद: स्कंदगुप्त, अनुपम प्रकाशन, पटना, 2002, वही, पृ॰ 111
15. वही, पृ॰ 111
16. वही, पृ॰ 129

****